**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 3; Issue 1; January 2017; Page No. 04-06**

# आज के युग में 'अंधेरे में' की प्रासंगिकता

**दीपक**

शोधार्थी, पी0एच0डी0 हिंदी, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़, जांट–पाली, हरियाणा, भारत।

**प्रस्तावना**

मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' की अनेक व्याख्याएं प्रायः आलोचकों ने की। परन्तु उनसे जो निष्कर्ष निकले हैं उनसे जितनी इस कविता को समझने में मदद मिली है उतना ही उन्होंने भरमाया भी है। किसी ने उसे अस्मिता की खोज से जोड़कर देखा है, किसी ने रहस्यवाद, अस्तित्ववाद के तत्त्व उसमें खोज निकाले तो किसी ने सशस्त्र क्रांति के बीज ढूँढ निकाले। निःसंदेह कविता का पटल इतना व्यापक है कि इसमें आलोचकों जहाँ–तहाँ हाथ–पाँव मारने का अवकाश मिल जाता है। किंतु यदि आज के संदर्भ में देखें तो कविता के 'रेलेवेंट' होने में कोई संदेह नहीं है।

महान् रचनाओं के साथ सुविधा या कहें कि दुविधा यह है कि उसके अर्थ किसी भी कालखण्ड में धूमिल नहीं पड़ते। इसीलिए 'राम की शक्तिपूजा' व 'अंधेरे में' जैसी कविताएँ आज भी अपनी प्रासंगिकता कायम रखे हुए हैं। 'शक्तिपूजा' का संदर्भ पौराणिक होते हुए भी निराला के स्वयं के जीवन संघर्ष व स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ जाता है। इसी प्रकार 'अंधेरे में' का सारा का सारा वातावरण अपने तत्कालीन समाज को भी समेटे हुए है।

नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' में कविता की जो व्याख्या की है उसमें काव्य नायक को अस्मिता की खोज से उद्विग्न दिखाया गया है। वस्तुतः अस्मिता का संकट जितना उस दौर में था उससे कहीं ज्यादा आज के दौर में है। आज यंत्रवत होता मनुष्य अपनी अस्मिता की खोज में ही दिन–रात लगा रहता है। किंतु आज स्थिति इतनी विकट है कि उसे 'आत्मसंभवा' भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसे पाने की संभावनाएँ प्रायः क्षीण होती जा रही है। लेकिन दुविधा यह है कि इस अस्मिता की खोज वाले प्रकरण से भी आलोचकों को आपत्ति है। क्योंकि इससे काव्य नायक की असमर्थता का बोध होता है। इस आधार पर उसे विक्षित और पागल तक करार दिया जा सकता है। अमिताभ राय ने इस बात को बखूबी उठाया है। उनके अनुसार– ''मुक्तिबोध की 'परम अभिव्यक्ति' मात्र अभिव्यक्ति की खोज नहीं है। वह आज के आधुनिक जीवन के विभिन्न संदर्भों से जुड़कर अनेकानेक अर्थछवियाँ ग्रहण करती है।

वास्तव में 'अंधेरे में' कविता का अंधकार व्यक्ति की चेतना मात्र का अंधकार नहीं है। वह अंधकार संस्थानों के द्वारा प्रभावित है। स्वातंत्र्योत्तर जीवन में राजनीतिक स्खलन ने जिस स्वार्थ, सत्तालोलुपता को जन्म दिया उसका विष जीवन के हर क्षेत्र में फैला और समाज के स्तर पर व्यापक दुरावस्था का युग आया। इस अंधकार की व्यापकतर अभिव्यक्ति अंधेरे में का मुख्य लक्ष्य है।

मुक्तिबोध के काव्य संसार की पटभूमि में असंदिग्ध रूप से ऐसी शासनव्यवस्था या सत्ता है जो निहायत चालाक होने के साथ–साथ ही बेहद आततायी है। कर्फ्यू और मॉर्शल–लॉ इस सत्ता के आम तरीके हैं।''[1]

कविता में जिस व्यवस्था का जिस व्यवस्था का जिक्र किया गया है वह व्यवस्था बहुत कुछ आज की व्यवस्था से भिन्न नहीं है। ऐसी व्यवस्था, जिसका आतंक पूरी कविता में काव्यनायक पर छाया रहता है। ऐसी व्यवस्था, जिसके बारे में बोलना तो दूर महज़ उसे नंगा देख लेने पर ही सज़ा मिलने का डर बना रहता है–

> ''हाय, हाय! मैंने उन्हें देख लिया नंगा,
> इसकी मुझे और सज़ा मिलेगी''[2]

''यहाँ 'और' शब्द पिछली सारी सज़ाओं में इज़ाफे की ओर संकेत करता है। यह इज़ाफा एक दिन की उपलब्धि है। इस उपलब्धि में हमें स्वतंत्रता से तत्कालीन युवा वर्ग की आकांक्षा और भ्रष्ट तथा सत्तालोलुप कांग्रेसियों का अन्तर्विरोध भी देखना होगा। इस पीड़ा को मात्र मुक्तिबोध ही महसूस नहीं कर रहे थे। यह स्खलन की पीड़ा है और इसे तत्कालीन बौद्धिक समाज महसूस कर रहा था। ये स्थिति अगर कवि को प्रभावित न करें तो स्थिति और भयावह होगी।''[3]

कविता के काव्यनायक की स्थिति विचित्र है। एक और वह कहता है कि 'कमजोरियों से ही लगाव है मुझको' दूसरी ओर वह इस बात से अपराधबोध से ग्रस्त है कि–

> ''मानो मेरे कारण ही लग गया
> मॉर्शल–लॉ वह,''[4]

किंतु यह अपराधबोध मात्र अपराधबोध नहीं कहा जा सकता। यदि यह अपराधबोध है भी तो महान् दर्जे का अपराधबोध ही इसे कहा जा सकता है। क्योंकि आज कितने लोग है जो समाज की दुरावस्था का कारण अपने को मानते हैं? उत्तरदायित्वहीनता की जो स्थिति आज समाज में पनपी है उसने भी सामाजिक विकास को एक प्रकार से अवरुद्ध किया है। राजनेता, साहित्यकार, कलाकार, बुद्धिजीवी यदि अपना उत्तरदायित्व न समझे तो अंततः हानी समाज की ही होगी।

प्रायः काव्यनायक को अंतर्मुखी, असंग बुद्धि माना गया है साथ ही आत्मनिर्वासित भी। किंतु वास्तविकता तो यह है कि उसको अपने अंतर्मुखी होने पर ही, सबसे ज्यादा आपत्ति है। मेरा कहने का यह मतलब नहीं कि काव्यनायक स्वयं असंग बुद्धि है। अपितु अभिप्रायः यह है कि काव्यनायक असंग बुद्धि व अंतर्मुखता ''वस्तुतः 'अंधेरे में' का काव्यनायक आत्मनिर्वासित व्यक्ति है ही नहीं। अपितु वह एक अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति है, जो अपनी वैयक्तिक सीमाओं का अतिक्रमण करता है और जब वह अपनी वैयक्तिक सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने को बरगद के पास खड़ा पाता है तो वह इस बात की आवश्यकता महसूस करता है''[5]–

> ''एकदम जरूरी दोस्तों को खोजूँ
> पाऊँ मैं नए–नए सहचर
> सकर्मक सत्–चित् वेदना–भास्कर!![6]

इसका सबसे सशक्त उदाहरण है कविता की प्रसिद्ध पंक्तियाँ जिसमें कवि कहता है–

''ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धांतवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!
... ... ... ... ... ... ... ...
दुःखों के दागों को तमगों–सा पहना
अपने ही खयालों में दिन–रात रहना,
असंग बुद्धि व अकेले में सहना,
जिन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर,''[7]

ऐसे में काव्यनायक को अंतर्मुखी व आत्मनिर्वासित कतई नहीं माना जा सकता।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने मुक्तिबोध की जो आलोचना की उसे मैनेजर पाण्डेय ने विचारधारात्मक आलोचना कहा है। किंतु निश्चित रूप से यह आलोचना एकांगी ही कही जाएगी। उनकी एक कविता 'मुझे पुकारती हुई पुकार' के संबंध में वे लिखते हैं– ''कवि ने जो पाया है, वह अपूर्ण है, जीवन की अनुभूति से जो प्राणमूर्ति गढ़ी है, वह खण्डित है। इसी अपूर्णता के बोझ से मन में पुकार उठती है– पूर्णता की तलाश कर। पुकार सुनकर तिमिर–विवर में पड़ी हुई अशान्त नागिनी जाग उठती है, मृत्युगीत के छंद नष्ट हो जाते हैं, ''दबी हुई अनंत ज्योति'' जाग उठती है।

यह जो तिमिर–विवर में नागिनी उठती है, वह कुण्डलिनी है''[8]

'कल हमने जो चर्चा की थी' के संबंध में वे लिखते हैं, ''इसमें मुक्तिबोध किसी मित्र के साथ ज्वालामुखियों के भीतर पैठने और लावा के उद्‌गम तक पहुँचने का वर्णन करते हैं। वहाँ देखते हैं धरती की महानाड़ियाँ 'इड़ा–पिंगला फड़क रही थीं।' पास ही सुषुम्ना भी है जिसके 'अंगारी प्राण पथों पर' वे घूमते हैं। आगे कुण्डलिनी का उल्लेख है... ।''[9]

आगे रामविलास जी रहस्यवाद, अस्तित्ववाद व मनोविश्लेषणवाद की खोज उनकी कविताओं में करते हैं। ''वह सार्त्र की भावभूमि से हटकर किर्केगार्द और काफ्का के प्रदेश में विचरण करते हैं... चंबल की घाटी का टीला आधा अस्तित्ववादी है और आधा रहस्यवादी। खामौश सिसकिया भरने वाला मन– वह है अस्तित्ववादी। 'एक स्वप्न कथा' में मुक्तिबोध फिर मनोविश्लेषणशास्त्र का, रहस्यवाद का और मार्क्सवाद का समन्वय करते हैं।''[10]

डॉ0 पुस्तक में संकलित अपने दो लेखों में मुक्तिबोध की प्रशंसा भी खूब करते हैं, उनके काव्य–कौशल, उनकी शैली व उनके संवेदनशील कवि मन की। पर ठीक उसी लहजे में, जिसमें आचार्य शुक्ल कबीर की करते हैं। उनके पहले लेख 'मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष और उनकी कविता' की अन्तिम पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है– ''मुक्तिबोध की कविता असुरक्षित जीवन की कविता है। उसमें भावबोध की अस्थिरता और विचारों की उलझन भी है। लेकिन वह सब किसमें नहीं है? इसलिए भी उनकी कविता में सीखने और समझने के लिए बहुत कुछ है– खास तौर पर कवियों के लिए।''[11]

ध्यात्व्य है कि मुक्तिबोध का किस प्रकार का विश्लेषण और प्रशंसा यहाँ रामविलास जी ने की है। 'अंधेरे में' कविता में पंक्तियाँ हैं–

''मानो मेरे ही कारण लग गया
मॉर्शल–लॉ वह
मानो मेरी निष्क्रिय संज्ञा ने संकट बुलाया,
मानो मेरे कारण ही दुर्घट
हुई यह घटना।''[12]

इन पंक्तियों के बारे में डॉ शर्मा की राय है कि इनमें अस्तित्ववाद व अपराध–बोध की भावना है। स्पष्ट है कि यहाँ रामविलास जी ने तर्कों को कुतर्कों की तरह इस्तेमाल किया है।

मुक्तिबाध में आत्मसंघर्ष है, अन्तर्द्वन्द्व इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। 'लेकिन यह सब किसमें नहीं हैं।' उनकी कविताओं को उनके जीवन से अलग करके नहीं देखा जा सकता। उनकी अधिकतर कविताओं पर अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद और रहस्यवाद की छाया को भी नकारा नहीं जा सकता। पर डॉ0 शर्मा ने मुक्तिबोध की कविताओं, खासकर अंधेरे में में क्रांति व सामाजिक सरोकारों को कहीं रेखांकित ही नहीं किया। ऐसा क्यों?

बहरहाल, 'अंधेरे में' की प्रासंगिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। भले ही उसके बारे में आलोचकों में मतैक्य न रहा हो। कविता तब जोरदार ढंग से हमारे समाज पर कटाक्ष करती है जब कवि कहते हैं–

''सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्
चिन्तक, शिल्पकार, नर्त्तक चुप हैं
उनके खयाल में यह सब गप है''[13]

तब लगता है जैसे कवि आज ही के समय में बैठकर, अपने आज के समाज का अवलोकन कर, लिख रहा हो। निश्चित रूप से किसी समाज में साहित्यिकों, आलोचकों, बुद्धिजीवियों, चिन्तकों, नर्त्तकों, और शिल्पकारों का चुप रहना भविष्य में पैदा होने जा रहे व्यापक संकट की ओर इशारा करता है।

मुक्तिबोध का विचार था कि व्यक्ति को मुक्ति अकेले में नहीं मिल सकती। यदि वह प्राप्त होगी तो सामूहिक तौर पर सभी को प्राप्त होगी। ऐसे में उन पर व्यक्तिवादी व अस्तित्ववादी होने का आरोप लगाना संगत प्रतीत नहीं होता।

जिस प्रकार अकेले में मुक्तिसंभव नहीं है ठीक उसी प्रकार कला के किसी एक माध्यम से अत्याचारी व्यवस्था का सामना भी नहीं किया जा सकता। इसीलिए मुक्तिबोध कहते हैं–

''अब अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब।''[14]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे' से अभिप्रायः सभी कलाओं से है। सभी कलाएँ व बौद्धिक अनुशासन आपस में जुड़े हुए हैं। फिर चाहे वह कवि हो, चिन्तक हो, शिल्पकार हो, नर्त्तक हो, या फिर बुद्धिजीवि हो। इसीलिए कविता में सभी कलाओं व कलाकारों को एक साथ आह्‌वान किया गया है। आज के दौर में यह कथन कितना प्रासंगिक हो सकता है, इस पर ज्यादा कहने की आवश्यकता मैं यहाँ अनुभव नहीं करता।

वास्तव में अंधेरे में कविता देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण करती है। संभवतः यही कारण है कि आज उसके रचनाकाल के पचास वर्ष पूरे होने पर भी यह कविता बहस के केंद्र में रही है और भविष्य में भी रहेगी।

## संदर्भ–सूचि


1. संपादकः विद्या सिन्हा; नई कविताः निराला, अज्ञेय और मुक्तिबोध; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 2007, पृष्ठः 144–145।
2. गजानन माधव मुक्तिबोध; चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करणः 2008, पृष्ठः 266।
3. संपादकः विद्या सिन्हा; नई कविताः निराला, अज्ञेय और मुक्तिबोध; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 2007, पृष्ठः 148।
4. गजानन माधव मुक्तिबोध; चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करणः 2008, पृष्ठः 270।
5. संपादकः विद्या सिन्हा; नई कविताः निराला, अज्ञेय और मुक्तिबोध; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 2007, पृ. 156।

6. गजानन माधव मुक्तिबोध; चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करणः 2008, पृष्ठः 282।
7. वही; पृष्ठः 268।
8. रामविलास शर्मा; नई कविता और अस्तित्ववाद; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 1993, पृष्ठः 133।
9. वही।
10. वही; पृष्ठः 141।
11. वही; पृष्ठः 152।
12. गजानन माधव मुक्तिबोध; चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करणः 2008, पृष्ठः 270।
13. वही; पृष्ठः 291।
14. वही; पृष्ठः 287।